सहज योग

काशी प्रसाद

सहज योग

प्रकाशक :
श्री भवानीशंकर स्मारक ट्रस्ट
समाधि, कोंच रोड,
उरई (उ० प्र०)

प्रथम संस्करण : ५००प्रतियाँ
२६ जुलाई, १६८०

सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन

मूल्य : रु० १.५०

मुद्रक :
पारस प्रेस, १७४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-२२६००४
फोन:-४६६२४

पूज्य सद्गुरु भवानी शङ्कर जी

: हरि ॐ :

पूज्य चच्चा जी का साकार आत्म--दर्शन

कर्मयोग

परम पूज्य गुरुदेव चच्चाजी पूर्ण परब्रह्म के रूप में कर्मयोगी थे। जिस प्रकार भगवान राम ने संसार की मर्यादा रखते हुए अपनी लीला की थी, उसी भांति पूज्य चच्चाजी भी गृहस्थ आश्रम के नैत्यिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक कर्मों का नियमित रूप से पालन करते हुए, निरन्तर अपने स्वरूप में स्थित रहते थे। पूज्य चच्चाजी की साधना का मार्ग 'कर्मयोग' था। इसके द्वारा ही वह ब्रह्म प्राप्ति का साधन बताते थे। मनुष्य संसार में आता है और चला जाता है। इस बात का किसी को पता नहीं रहता कि कौन कहां से आता है और कहां चला जाता है। मनुष्य योनि ही ऐसी है जो कि योगाभ्यास द्वारा इसकी खोज करके अपने जीवन को सार्थक बनाती है। संसार में जितने प्राणी या भूतमात्र हैं उन सबमें एक चैतन्य शक्ति व्याप्त है जिसके द्वारा वह जीवित है। शरीर से उस चैतन्य शक्ति के विलग हो जाने पर प्राणी निर्जीव हो जाता है। वह शक्ति समान रूप से सब भूतमात्र में व्याप्त रहती है। उस शक्ति को हम चाहे आत्मा कहें चाहे परमात्मा कहे एक ही बात है। इस तथ्यको चाहे कोई नास्तिक हो चाहे आस्तिक सभी को मानना ही पड़ेगा। वह शक्ति क्या है और कहां है इसको समझना ही सच्चा ज्ञान है। पूज्य चच्चाजी ने इस प्रसंग में एक कहानी बताई थी-एक बार एक आदमी ने एक महात्मा से यह प्रश्न किया कि महाराज हम किसकी उपासना करें। महात्मा ने सोचा कि यह अभी भ्रम में पड़ा हुआ है अपना कोई निश्चय नहीं कर सका है इसलिए इसे अभी कुछ उपदेश दिया जायगा तो सम्भव है कि इसके भ्रमपूर्ण अन्तः करण में उसकी आस्था न हो। इसलिए ऐसा करना चाहिए कि वह स्वयं धीरे धीरे एक सिद्धान्त पर आ जाय। ऐसा विचार कर महात्मा ने उत्तर दिया कि जिसको तुम सबसे बड़ा समझो उसकी ही उपासना करो। वह मनुष्य यह सुनकर अपने घर गया और विचार किया कि शिवजी ही सबसे बड़े मालूम होते है उन्होने विष पी लिया और संसार के संहार करने की शक्ति रखते हैं इसलिए उन्हीं की उपासना करनी चाहिए। यह निश्चय करके वह शिवजी की उपासना करने लगा। एक दिन एक चूहा भगवान की मूर्ति पर चढ़ कर नैवेद्य खाने लगा, उस मनुष्य ने सोचा कि शंकर जी से बड़े तो यह चूहे जी ही

मालूम पड़ते हैं जो उनके सिर पर बैठे थे, यह विचार कर उसने शिवजी की उपासना छोड़ दी और चूहे जी को पकड़ कर उनकी पूजा करने लगा। एक दिन एक बिल्ली उस चूहे पर झपटी तो चूहा भागा, उस मनुष्य ने विचार किया कि चूहे से बड़ी तो बिल्ली ही है तो वह बिल्ली की पूजा करने लगा, एक दिन दूधकी हांडी में बिल्ली दूध पी रही थी कि उसकी स्त्री ने देखा, स्त्री बिल्ली के पीछे दौड़ी तो बिल्ली भागी, उस मनुष्य ने विचार किया कि बिल्ली से बड़ी तो मेरी स्त्री ही है। वह अपनी स्त्री की पूजा करने लगा। एक दिन उसमें और स्त्री में झगड़ा हुआ वह स्त्री को पीटने दौड़ा तो स्त्री भागी, उसने विचार किया कि स्त्री से बड़ा तो मैं ही हूं। इस प्रकार समस्त बाह्य जगत में सबसे बड़े की खोज करते करते उसने अन्त में अपने को ही सबसे बड़ा पाया। अब अपनी उपासना किस प्रकार की जाये यह जानने के लिए वह उन महात्मा जी के पास गया और अपनी पूरी उपासना का समाचार सुनाकर कहा कि अब आप मुझे अपनी उपासना का उपाय बतायें। महात्मा ने सोचा कि अब इसका चित्त एक सिद्धान्त पर स्थिर हो गया है इसलिए यह उपदेश का पात्र हो गया। महात्मा ने कहा कि अभी तक तुमने बाह्य जगत में खोज की है और निश्चय किया है कि तुम ही सबसे बड़े हो, अब तुम यह बतलाओ कि तुम कौन हो ? उसने कहा महाराज, बैठा तो हूं आपके सामने।

महात्मा ने कहा....हमारे सामने तो तुम नहीं बैठे हो तुम्हारा शरीर बैठा है। यह तुम्हारा सिर है, यह तुम्हारा हाथ है, यह तुम्हारा पेट है, यह तुम्हारा, पैर है। इस प्रकार तुम्हारा विभिन्न अंग हमारे नेत्र देख रहे हैं। जिस प्रकार तुम्हारा, मकान, तुम्हारा कोट, तुम्हारे वस्त्र तुमसे जुदा हैं, उसी प्रकार हाथ, पांव, सिर, पेट आदि अंग प्रत्यंग तुमसे भिन्न हैं। ये तुम्हारे अंग है यह तुम्हारा शरीर है पर तुम शरीर नहीं हो। अब विचार कर बतलाओ कि तुम कौन हो। वह मौन रह गया, कहा : श्रीमहाराज मुझे तो मालूम नहीं कि मैं कौन हूं। महात्मा ने उपनिषद की एक कथा सुनाई कि एक बार शरीर की विभिन्न कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों में विवाद हुआ। प्रत्येक इन्द्रिय अपने को बड़ा कहने लगी। ब्रह्मा जी पंच चुने गये। पंच ने कहा कि सब इन्द्रियां एक एक करके शरीर छोड़ो।

एक एक करके हाथ पैर आदि सभी इन्द्रियों ने शरीर को छोड़ा परन्तु शरीर बराबर जीवित रहा, फिर एक एक करके नेत्र, कर्ण आदि ज्ञानेन्द्रियों ने शरीर को छोड़ा तो शरीर फिर भी जीवित रहा। अन्त में प्राण ने शरीर को छोड़ना शुरू किया। जैसे प्राण निकला, सभी इन्द्रिया बेकार होने लगी और शरीर ढीला होने लगा, तुरन्त सब इन्द्रियों ने मान लिया कि प्राण ही शरीर में सबसे बड़ा है। प्राण की सत्ता से ही

शरीर में शक्ति का संचार होता है। महात्मा ने कहा कि विचार करो कि क्या प्राण ही तुम हो, प्राण तुम्हारा है पर तुम नहीं हो। जिस प्रकार शरीर के अंग तुमसे भिन्न है उसी प्रकार तुम्हारा प्राण भी तुमसे भिन्न है, प्राण भी तुम नहीं हो, उसी प्रकार मन और बुद्धि भी तुम नहीं हो, अर्थात न तुम यह स्थूल शरीर हो और न सूक्ष्म शरीर हो और न तुम कारण शरीर हो क्योंकि वह तो अज्ञान अविद्या है। वह तुम्हारा शरीर हो ही नहीं सकता क्योंकि तुम तो जागृत स्वप्न और सुषुप्ति सबके दृष्ट साक्षी रूप, चैतन्यस्वरूप, स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरों से परे इनके अधिष्ठान रूप हो।

वास्तव में जो तुम हो उसे आत्मा कहते है। उसके स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। वह त्रिगुणातीत अर्थात सत्व, रज और तम तीनों गुणों से परे होने के कारण वर्णनातीत है। वर्णन न होने वाला। है इसीलिए उसके स्वरूप का बोध कराने के लिए यह कहा जाता है कि आत्मा न शरीर है, न इन्द्रिय है, न प्राण है, न मन है और न बुद्धि है। इसका बोध योगसाधना द्वारा ही होता है, जिसका अनुभव साधक लोग स्वयं करते हैं। साधारणतया भूतमात्र उस शक्ति को अपनी बाह्य दृष्टि से नहीं देख पाता है। बिरले ही ऐसे है जो कि अन्तरदृष्टि से योगाभ्यास द्वारा उस शक्ति का अनुभव द्वारा साक्षात्कार करते है। वह शक्ति हमारे अन्दर ही है।

पूज्य चच्चा जी ने बतलाया कि योगाभ्यास दो प्रकार के होते है। एक कर्मसन्यास दूसरा कर्मयोग। इन दोनों में से प्रत्येक प्राणी के लिए 'कर्म योग' सुगम तथा सरल मार्ग है। जिस प्रकार किसी नदी या समुद्र को पार करने के लिए किसी नाव में सभी बच्चे, बूढ़े, स्त्रियां, पुरुष आदि बैठकर पार करते है उसी भांति कर्मयोग द्वारा सभी ज्ञानी अज्ञानी योगाभ्यास करके देह धारण करते हुए भी आत्मस्वरूप में तद्रूप रहते है। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है कि योगाभ्यास द्वारा ऐसे कर्मयोगियों में और मुझ में कोई अन्तर नहीं होता वह मेरे साकार रूप में ही संसार में प्राणियों के परोपकार व हित के लिए देह धारण किए रहते है।

परमपूज्य चच्चाजी ने बताया कि "योग" का अर्थ जोड़ होता है। एक के दूसरी वस्तु में मिल जाने को जोड़ कहते हैं। जिस प्रकार कोई नदी समुद्र में मिलने पर उसका अपना रूप खत्म हो जाता है और वह समुद्र के रूप में ही हो जाती है, उसी प्रकार गुरु शिष्य, जीव ब्रह्म, आत्मा परमात्मा का भी योगाभ्यास द्वारा द्वैत भाव खत्म होकर अद्वैत भाव में परिवर्तन हो जाता है। उस समय योगाभ्यासी को सारा संसार एक रूप ही दिखाई देता है। वह संसार के सारे कार्य करते हुए देहधारी

होने पर भी विदेह रहता है। इस सम्बन्ध में पूज्य चच्चाजी ने विदेह महाराजा जनक और नारद जी की एक कथा सुनाई थी। नारद जी उच्चकोटि के ब्रह्मज्ञानी थे। उन्हें अपने ज्ञान का अभिमान हुआ। वह भगवान विष्णु के पास स्वर्गलोक में पहुँचे। विष्णु जी ने नारद जी का बड़ा स्वागत किया और कहा नारद जी आपका ज्ञान तो उच्चकोटि का है परन्तु आप में अभी "योग" की कमी है। नारद जी ने कहा महाराज योग विद्या मुझे कहाँ सीखनी पड़ेगी ? विष्णु जी ने उनसे कहा कि आप महाराजा जनक के पास जायें वह आपको 'योग' का साधन बतायेंगे। नारद जी को आश्चर्य हुआ कि एक राजा जो संसार में फँसा हुआ है वह क्या योग बता सकेंगे, फिर भी भगवान की आज्ञा थी, नारद जी महाराजा जनक के दरबार में पहुँचे। महाराजा जनक दरबार में बैठे थे। अप्सराओं का नाच हो रहा था। उसी समय नारद जी वहाँ पहुँचे। जनक जी ने उनका आदर सत्कार किया और पूछा-महाराज कैसे कष्ट किया ? मेरे योग्य सेवा बतायें। नारद जी ने कहा–मुझे विष्णु जी ने आपके पास "योग" विद्या सीखने को भेजा है। नारद जी के रहने, ठहरने, खाने पीने आदि का उत्तम प्रबन्ध कर दिया गया तथा नारद जी उनके महल में रहने लगे। एक दिन राजा ने आज्ञा दी कि जनकपुरी नगरी को अच्छी प्रकार सजाया जावे। नगरी सजा दी गई। महाराजा जनक ने नारद जी को बुलाया और कहा : नारद जी आज मैंने आपके स्वागत में जनकपुरी सजायी है मैं चाहता हूँ कि आप नगरी का भ्रमण करें और देखें कि नगरी कैसी सजी हुई है। राजा जनक ने नारद जी से आगे कहा : आपको एक काम और करना है। उन्होंने नारद जी को एक कटोरा दिया जिसमें ऊपर तक तेल भरा हुआ था। राजा जनक ने दो सिपाहियों को तलवारों के सहित बुलाया। फिर नारद जी से बोले-नारदजी मैं राजा की हैसियत से आपको आज्ञा देता हूँ कि आप मेरी नगरी में भ्रमण करें और देखें कि नगरी किस तरह सजी हुई है परन्तु इस बात का ध्यान रहे कि आपकी हथेली पर जो तेल से भरा हुआ कटोरा है उसमें से एक बूँद भी नीचे गिरने न पावे। आपकी बगल में मेरे यह दो सिपाही नंगी तलवार लिए साथ चलेंगे। यदि तेल की एक भी बूंद नीचे गिरी तो यह आपका सिर तलवार द्वारा धड़ से अलग कर देंगे। अब आप जाइये। नारद जी बड़ी मुसीबत में पड़ गए। राजाज्ञा थी मानना ही पड़ा। नारद जी सारे शहर का भ्रमण कर आये उनका मन व दृष्टि कटोरे पर ही लगी रही ताकि तेल की बूंद न गिरने पावे। लौटने पर राजा जनक ने कहा: नारद जी आप पूरी नगरी घूम आए हैं कृपया बतायें आपने क्या देखा, नगरी कैसी सजी थी, राजद्वार पर जो अप्सराओं का नाच हो रहा था वह आपको कैसा

लगा ? नारद जी ने उत्तर दिया: महाराज मेरा मन व दृष्टि तो हाथ पर रक्खे हुए कटोरे की तरफ ही था क्योंकि मुझे भय था कि उसकी एक भी बूंद गिरने पर मेरा सिर काट दिया जायेगा इसलिए मैं तो कुछ भी नहीं देख पाया। मेरा ध्यान कटोरे पर ही रहा। महाराजा जनक ने कहा–नारद जी यही "योग" है। जिस प्रकार आप सारी नगरी घूम आये और आपका ध्यान कटोरे पर रहा उसी प्रकार संसार के सारे कार्य करते हुए भी आपका मन ईश्वर की ओर लगा रहे यही "योग" है। गीता में कहा है: –

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥

जो लोग अपने मन को हटाकर माया मोह से बिल्कुल अलग कर लेते है और गुरू के उपदेश से अपने मन का सारा मल धो डालते हैं और उसे आत्मस्वरूप में भली भांति स्थापित कर देते हैं और जिस प्रकार नमक जब तक समुद्र में नहीं पड़ता, तब तक तो वह समुद्र से भिन्न और आकार के विचार से उसके सामने बहुत ही तुच्छ जान पड़ता है, पर जब वही नमक समुद्र में मिलकर उसके साथ एक जीव हो जाताहै, तब वह भी समुद्र के समान ही विस्तृत और अनन्त हो जाता है, उसी प्रकार जिसका मन संकल्प विकल्पों से बाहर निकल कर चैतन्य में मिल जाता है और उसके साथ समरस हो जाता है, वह पुरुष यद्यपि देखने में देश काल की मर्यादा के विचार से अन्यान्य लोगों की तरह एक देश में स्थित जान पड़ता है, तो भी वह अपने आत्म स्वरूप से तीनों भुवनों को व्याप्त कर लेता है। अर्थात् ऐसे पुरुष के सम्बन्ध में "कर्ता" "कर्म" और इसी प्रकार की दूसरी बातों का सहज में अन्त हो जाता है और तब वह चाहे सब प्रकार से कर्मों का आचरण भी क्यों न करता रहे, तो भी वह सदा अकर्ता ही रहता है। क्योंकि ऐसे पुरुष को जब अपने देह भाव का भी स्मरण नही रह जाता, तब उसमें कर्तृत्व भला किस प्रकार लग सकता है ?

सन्यास का अर्थ प्रायः घर बार छोड़ कर सन्यास करने से ही लगाया जाता है। पूज्य चच्चाजी ने बताया कि यदि कर्मयोग का ठीक तरह से आचरण किया जाय तो "कर्म सन्यास" का फल भी आप से आप मिल जाता है। क्योंकि योगाभ्यास द्वारा जब अभ्यासी की विदेह अवस्था हो जाती है, उसे अपनी देह का भान नहीं रहता तो कर्म करने का भान अपने आप ही खत्म हो जाता है। दूसरे उसका अहं भाव खत्म हो जाता है इसलिए वह सारे कार्यों का स्वयं कर्ता नही बनता तथा निष्काम भाव से वह सारे कार्य करता रहता है। यही कर्म सन्यास है। जिसके मन

में "मैं" "मेरा" आदि की भावनाएँ नहीं रहती उसी पुरुष को नित्य सन्यासी समझना चाहिए। जो मनुष्य इस अवस्था में पहुँच जाता है उसके लिए कर्म संग बाधक नहीं होते और वह सदा अखंड सुख से सुखी रहता है। ऐसे नित्य सन्यासी को घर बार और स्त्री पुत्र आदि के बखेड़ों का परित्याग नहीं करना पड़ता, क्योंकि वह पुरुष संग हीन रह कर यह बात अच्छी तरह जानता रहता है कि इन सब बखेड़ों के साथ मेरा कुछ भी सम्बन्ध नही है। संसार की उपाधियों में रहते हुए भी जिसकी बुद्धि को संकल्प विकल्प की आँच नहीं लगती, वह कभी कर्म के बन्धनों में नही पड़ता। इसीलिए कर्म सन्यास और कर्म योग दोनों साथ ही साथ चलने वाले हैं। जो व्यक्ति कर्म योग के पैदलवाले रास्ते से मोक्ष रूपी पर्वत पर चढ़ता है वह शीघ्र ही आत्मानन्द के शिखर पर पहुँच जाता है। परन्तु जिन्हें योग साधन की प्राप्ति नहीं होती, वे व्यर्थ के बखेड़ो में फसे रहते हैं और उन्हें कभी सच्चे सन्यास की प्राप्ति नहीं होती।

आजकल प्राय: यह देखा जाता है कि जरा से चमत्कार आदि दिखाने पर लोग सन्यासियों पर विश्वास करने लगते हैं। आध्यात्मिक मार्ग पर चलने वाले व्यक्तियों को पूज्य चच्चाजी कहते थे चमत्कारों के फेर में नहीं पड़ना चाहिये। उनका कहना था कि जो इस कर्मयोग के मार्ग पर चलता है उसके हर कार्य चमत्कारिक होते है। जो सच्चा सन्यासी होगा वह कभी चमत्कारों के फेर में नहीं पड़ेगा। पूज्य चच्चा जी ने बतलाया कि योगी और सन्यासी दोनों एक ही होते हैं। यदि यह नाम का भेद दूर कर दिया जाय तो योग ही सन्यास होता है और यदि अन्तरदृष्टि से देखा जाय तो कोई अन्तर दिखाई नहीं पड़ता। जिस प्रकार दो भिन्न मार्गों से एक ही स्थान पर पहुंचते है तथा जिस प्रकार जल भिन्न भिन्न बर्तनों में भर दिया जाय पर उसका रूप एक ही रहता है उसी प्रकार योग और सन्यास दोनों एक ही रूप हैं जो व्यक्ति कर्मों का आचरण करता हुआ भी उन कर्मों के फल से संग नहीं रखता उसी को योगी अथवा सन्यासी समझना चाहिए। जिस प्रकार पृथ्वी वृक्ष आदि उत्पन्न करती है,परन्तु उनमें लगने वाले फलों की वह इच्छा नहीं करती उसी प्रकार जो इस कर्मयोग का आश्रय लेकर अपनी परिस्थितियों के अनुरूप जिस समय जो उचित कर्तव्य करना होता है, उस समय उसे कर डालता है, परन्तु फिर भी जिसमें देहाभिमान नहीं होता और जिसके मन में उसके फल की इच्छा नहीं होती उसी को सच्चा सन्यासी समझना चाहिए और वही सच्चा योगी है। परन्तु यदि प्रबल वैराग्य की कमी अथवा संस्कारों को भोगे बिना सन्यास धारण कर लिया जाता है तो वह असफल व निरर्थक प्रयास ही सिद्ध होता है। अत: कर्मयोग ही सरल व सुगम रास्ता है। एक समय की बात है परम पूज्य चच्चा जी झांसी में थे। सायंकाल के

समय उनके घर के आगे चबूतरे पर सत्संग हो रहा था। वहाँ से एक सन्यासी निकले। उन्होंने सत्संग होते देखकर चिल्ला कर कहना शुरू किया कि यह सब क्या हो रहा है। यह ढोंग है लोगो को ईश्वर के नाम पर धोखा दिया जा रहा है। एक सत्संगी भाई को यह सुनकर कुछ दुख हुआ और उन्होने उन महात्माजी को बुलाकर उनके क्रोधित होने का कारण पूछा। इतने में पूज्य चच्चाजीने महात्मा जीको अपने पास बुलाया और समझाया कि आपको इन बातोंसे क्या मतलब है आप अपने रास्ते जाये। परन्तु महात्माजी नहीं माने। तब चच्चाजीने कहा कि अगर आप जानना चाहते है तो थोड़ो देर सत्संग करे आपको स्वयं मालूम हो जायगा। महात्माजीने सत्संग किया। एक घंटे बाद आँखें खोलने पर उन्होंने पूज्य चच्चाजी के चरण पकड़ कर कहा : महाराज मुझे माफ करें। आपके पास यह इतनी ऊँची चीज है कि यदि आप आज्ञा दें तो इसको सारे विश्व में फैला दी जाये। पूज्य चच्चाजी ने कहा : सन्यासी जी यह चीज इस तरह फेंकने की नहीं है इसको वही प्राप्त करता है जो इसका अधिकारी होता है। फिर महात्माजी ने कहा कि आप मुझे अपना शिष्य बनाकर वह विद्या मुझे सिखला दे। चच्चाजी ने उत्तर दिया कि यह विद्या "कर्मयोग" है यदि आप सन्यास छोड़ कर गृहस्थाश्रम में आ सकें तो यह विद्या आपको बतलाई जा सकती है। चच्चाजी ने बतलाया कि कर्म करते रहने की अवस्था मे जहाँ संकल्प विकल्प पैदा होने के, कारण टूट जाते हैं बस वहीं से कर्मयोग का रहस्य प्रतीत होने लगता है।

पूज्य चच्चाजी ने बताया कि यदि हम अपना अहं भाव छोड़ दें और अपने इष्टदेव के रूप में हो जाये तो मानो सहज में ही हम उस रूप को प्राप्त हो जाते है और नही तो रेशम के कीड़े की तरह जो अपने आपको स्वयं कोष में बन्द कर लेता है, मनुष्य भी रूप, लावण्य और सुन्दरता देखकर उसमे अपने आपको फंसा लेता है। शरीर की सुन्दरता केवल मल मूत्र ही है। पूज्य चच्चाजी ने इस प्रसंग में शरीर की सुन्दरता क्या है, को दृष्टान्त देकर समझाया : एक राजा किसी गरीब की पत्नी पर मोहित हो गया और उससे विवाह करना चाहा। वह स्त्री सुन्दर व चरित्रवान थी। उसका पति बड़ा दुखी हुआ परन्तु उसकी स्त्री ने बड़े धैर्य से काम लिया। उसने पति से कहा कि राजा के पास खबर भेज दें कि १५ दिन बाद वह पधारे तो शादी हो जावेगी। इधर पन्द्रह दिन तक उस स्त्री ने दस्त लगने की दवा खाना शुरू कर दिया तथा जो मल मूत्र वह करती थी उसको एक बड़े बर्तन में बन्द करती जाती थी। १५ दिन बाद उसकी सारी सुन्दरता खत्म हो गई और वह सूखी लकड़ी की तरह खाट पर पड़ गई। उसने राजा को बुलाया। राजाजी बड़े प्रसन्न होकर उसके घर

पहुँचे परन्तु उसकी हालत देखकर आश्चर्यचकित हो गए। उस स्त्री ने कहा राजाजी क्या आप अब भी मुझसे शादी करने को तैयार है। राजा ने कोई उत्तर नहीं दिया। स्त्री ने कहा आप मौन क्यों हैं आप मुझसे शादी करना चाहते थे या मेरी सुन्दरता से। मेरी सुन्दरता से आप शादी करना चाहते थे तो वह उस बड़े बर्तन में बन्द है उसे खोलकर आप देखें। राजाजी ने बर्तन खोलकर देखा तो उसमें मल मूत्र भरा पड़ा था। स्त्री ने कहा : राजाजी यही मेरी सुन्दरता थी। राजा बहुत लज्जित हुए और उस स्त्री से क्षमा माँगी।

पूज्य चच्चाजीने बताया कि कर्मयोग द्वारा काम, क्रोध, मोह लोभ रूपी अंधकार नष्ट होकर अभ्यासी स्वतः आत्मस्वरूपमें स्थित हो जाता है। जब योगाभ्याससे इन्द्रियों का नियंत्रण व निग्रह हो जाता है उसी समय चित्त आत्मस्वरूपमें प्रवेश करने लगता है। फिर जब चित्त वहाँ से लौटता है और आत्मस्वरूप की ओर उसकी पीठ होती है और वह अपने स्वरूप की ओर देखता है जिसमें उसके आत्म स्वरूप की झलक प्रतिविम्बित होती हैं, तब उसे देखते ही वह पहचान जाता है और कहता है : मैं स्वयम् यही तत्व हूं। ज्योंही वह उसे पहचान लेता है त्योंही वह सुख के साम्राज्य का भोग करने लगता है और फिर आप ही आप उस परमात्म तत्व के साथ मिलकर एक रूप हो जाता है। जिसके आगे या उस पार कुछ भी नही है और जिसका वास्तविक ज्ञान इन्द्रियों को कभी होता ही नही, उसके साथ वह तन्मय होकर अपनी जगह पर आत्मसुख में रहता है। फिर उसका चित्त कभी विचलित नही होता। जब चित्त इस प्रकार आत्म तत्व में विलीन हो जाता है तब वह विदेह अवस्था को प्राप्त हो जाता है। उसे अलौकिक सुख प्राप्त हो जाता है और इसलिए वह इस शरीर के सब दुख सुखों की बाते भूल जाता है। ऐसे सुख का रस चख लेने पर संसार के बंधनों में फँसा हुआ मन वासनाओं का कभी स्मरण या ध्यान भी नहीं करता। ऐसा सुख चच्चाजी ने बताया कि योगाभ्यास द्वारा मूर्तिमान होकर सामने दिखाई पड़ने लगता है। ऐसे पुरुष को सारा संसार ब्रह्ममय ही दिखाई देने लगता है। भगवान कृष्ण ने गीता में अर्जुन से कहा है :

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन ॥
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।

अर्थ : इस तत्व के विषय में कुछ भी भ्रम या भ्रान्ति नही है कि मैं ही समस्त शरीरों में निवास करता हूं और इसी तरह से यह बात भी निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि यह सारा विश्व मुझमें ही निवास करता है। अतः हर आदमी को ऐसी तैयारी करनी चाहिए कि उसकी समझ में यह बात अच्छी तरह आ जाय कि विश्व और हम बिल्कुल एक हैं और एक दूसरे से मिले हुए हैं। हे अर्जुन, सच तो यह है कि जो मनुष्य योगाभ्यास द्वारा इस प्रकार ऐक्य की भावना रखता हुआ मुझे ही समस्त भूतों में समान रूप से मिला हुआ समझकर मुझे भजता है, भूतमात्र में केवल ऊपर से दिखाई पड़ने वाले भेद के कारण जिसके अन्तःकरण में किसी प्रकार का भेद भाव हो ही नहीं सकता और जो सब जगह केवल मेरा ही एक स्वरूप देखता है, वह पुरुष इस प्रकार के बन्धन को निरर्थक कर देता है कि यही मैं हूँ। अर्थात ऐसा पुरुष केवल अपने आपको ही "मैं" नही समझता, बल्कि सबको अपने समान और एक समझता है। और हे अर्जुन, चाहे मैंने यह बात न कही हो, परन्तु फिर भी ऐसा पुरुष मैं ही हूं। अर्थात ऐसे पुरुष को मुझसे भिन्न नही समझना चाहिए। दीपक और उसके प्रकाश में जिस प्रकार का एक भाव होता है, उसी प्रकार का मेरा और उसका एक भाव होता है। ऐसा पुरुष मुझमें ही रहता है और मैं भी ऐसे पुरुष में रहता हूँ अर्थात् वह पुरुष मेरे ही रूप से साकार रहता है।

यह कर्मयोग की विद्या परम पूज्य गुरुदेव चच्चाजी को कैसे और कहाँ से प्राप्त हुई इसका संक्षिप्त विवरण पूज्य चच्चाजी ने निम्न प्रकार से दिया था : पूज्य चच्चाजी के माता पिता का उनके बालपन में ही देहावसान हो गया था। इसके पश्चात् वह अपने बड़े भाई साहब के संरक्षण में रहे। पूर्वजों के संस्कारों तथा स्वयं के संस्कारों के फलस्वरूप तथा माता पिता के वियोग के कारण इनमें जन्म से ही वैराग्य की प्रवृत्ति पैदा हो गई तथा ईश्वर भक्ति की ओर इनकी रुझान दिन प्रतिदिन बढ़ती रही। बचपन से ही यह घंटों तक रामायण, हनुमान चालीसा आदि का पाठ किया करते थे। उन दिनों रेलें आदि अधिक चलती नहीं थी। यह चना खाकर ही पैदल अयोध्याजी आदि तीर्थ स्थानों का भ्रमण करने चले जाया करते थे। मन्दिरों में रात रात भर जागकर पूजा किया करते थे। इनके भाई साहब इनकी इस प्रवृत्ति से बड़े चिन्तित रहते थे। इन्होंने हाई स्कूल तक शिक्षा प्राप्त की थी। शिक्षा के बाद इनकी शादी भी हुई थी पर कुछ दिनों बाद इनकी पत्नी परलोक सिधार गई थी। इसके पश्चात् इनकी दूसरी शादी हुई। इनकी नियुक्ति सिविल कोर्ट उरई में हुई थी।

लगभग २०, २२ वर्ष की अवस्था में इनमें प्रबल वैराग्य जाग्रत हुआ और इन्होंने गृहस्थाश्रम छोड़ कर सन्यास धारण करना चाहा । इस आशय से इन्होंने दो माह की छुट्टी ली । यह सोचकर कि किसी सच्चे महात्मा की शरण में जाकर सन्यास ले लिया जाय, वह घर से चल दिए । उनकी धर्मपत्नी । (गुरुमाता) ने भी आग्रह किया कि जब आप जा रहे है तो मैं भी आपके साथ चलूंगी । इस प्रकार दोनों घर से निकल पड़े । ये सारे तीर्थों, वनों, जंगलों पहाड़ों पर भ्रमण करते रहे परन्तु इनको कोई ऐसा सन्यासी नहीं मिल सका जिससे इनकी अभिलाषा पूरी होती । अन्त में हरिद्वार के पास एक मौनी बाबा से इनकी भेट हुई । वह बाबाजी मौन रहते थे । जो कुछ उनको कहना होता था वह स्लेट पर लिख कर दे देते थे । पूज्य चच्चाजी जब उनके पास पहुंचे तो उन्होंने स्लेट पर उनको यह लिख कर दिया कि आप घर से सन्यास धारण करने के आशय से निकले हैं, परन्तु आपको तीर्थों, वनों, पहाड़ों में ऐसा कोई सन्यासी नहीं मिलेगा जिसकी आप शरण ग्रहण कर सकें । आपको गृहस्थाश्रम में ही एक ऐसे सन्त के दर्शन होंगे जिनसे आपका कल्याण होगा और आपके द्वारा हजारों का कल्याण होगा । इतना पढ़ने के बाद यह उन महात्मा जी को साष्टांग प्रणाम करके घर चले आये और अपनी नौकरी फिर करने लगे । अब यह इस तलाश में रहे कि गृहस्थाश्रम में ऐसे संत कहाँ मिल सकते हैं । कुछ दिनों पश्चात् इनको पता चला कि फतेहगढ़ में गृहस्थाश्रम के ऐसे संत महात्मा रामचन्द्र जी के नाम से है । पूज्य चच्चाजी ने उनको पत्र डाला उसमें लिखा कि सुना है कि आप गृहस्थाश्रम के बहुत बड़े संत है तथा मैं आपके दर्शन करने आना चाहता हूं । महात्मा रामचन्द्र जी का उत्तर आया कि मैं कोई संत या महात्मा नहीं हूँ । मैं पक्का गृहस्थ हूँ और सुबह शाम ईश्वर का नाम ले लेता हूं । यदि आप आना चाहें तो शौक से आवें आप से मिलकर प्रसन्नता होगी । यह पत्र पाते ही पूज्य चच्चाजी अपनी धर्मपत्नी जी के साथ चार पाँच दिन की छुट्टी लेकर फतेहगढ़ पहुंचे । फतेहगढ़ पहुँचने पर पूज्य चच्चाजी महात्मा रामचन्द्र जी, जिन्हें "लालाजी" के नाम से पुकारा जाता था, से मिले और अपना परिचय दिया । पूज्य लालाजी ने पूज्य चच्चाजी के ठहरने आदि की व्यवस्था करके कहा : आप कितने दिन की छुट्टी लेकर आए हैं ? चच्चाजीने कहा : चार दिनकी छुट्टी लेकर आया हूं । तीन दिन तक पूज्य चच्चाजी व माता जी पूज्य लालाजी के यहाँ रहे परन्तु पूज्य चच्चाजी का नित्य का कार्यक्रम ऐसा था कि उनकी भेंट पूज्य लालाजी से नहीं हो पाती थी । पूज्य चच्चाजी प्रात: ४ बजे से उठ कर दिन को ९, १० बजे तक अपनी नैत्यिक पूजा पाठ करते थे इसके बाद पूज्य लालाजी, जो कलक्ट्री में नौकरी करते

थे, वहाँ चले जाते थे । सायंकाल फिर पूज्य चच्चा जी का संध्या आदि का कार्यक्रम आरम्भ हो जाता था जो कि रात्रि १० बजे तक चलता था इसलिए रात्रि में भी उनकी पूज्य लालाजी से भेट नहीं हो पाती थी । इस तरह तीन दिन गुजर गए । चौथे दिन चच्चाजी ने पूज्य लालाजी से समय निकाल कर कहा कि महाराज मेरी छुट्टी खत्म हो रही है मुझे कुछ साधना बताये । पूज्य लालाजी ने कहा ठीक है कल जाने से एक घंटे पूर्व तुम मुझ से मिल लेना जो कुछ मैं जानता हूं बता दूंगा । दूसरे दिन प्रात: लगभग ९ बजे के करीब वह पूज्य लालाजी से मिले ।

उस समय पूज्य लालाजीने पूज्य चच्चाजीको एक गहरी दृष्टिसे ही ऊपर से नीचे तक देखा । पूज्य चच्चाजी ने बताया उस दृष्टिमात्र से ही सारे शरीर में एक बिजली की करेन्ट सी दौड़ गई और मैं अपने आपको भूल गया । मुझे चारो ओर प्रकाश ही प्रकाश नजर आने लगा और मुझे हर तरफ लालाजी जी की ही मूर्ति दिखाई देने लगी । उस प्रकाश में मेरी चिदानन्द अवस्था हो गई, प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ा तथा मुझे देह का भान भी नहीं रहा । पूज्य चच्चाजी बतलाते थे कि वह अवस्था ऐसी थी जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता । उस प्रसन्नता का अनुभव ही किया जा सकता था । इसके पश्चात् पूज्य चच्चाजी ने बताया कि इतनी दृष्टि डाल कर पूज्य लालाजी तो अपने दफतर चले गए । इधर उनकी विचित्र अवस्था देखकर उनकी धर्मपत्नी जी को बड़ी चिन्ता हो गई । उन्होने हिम्मत करके तांगा मंगाया और दोनों किसी प्रकार घर वापिस आये । इसके बाद तीन दिन तक उनकी वही हालत रही । चौथे दिन कुछ ठीक होने पर उन्होंने सब हाल लिखकर पूज्य लालाजी को पत्र डाला । पूज्य लालाजी ने उत्तर दिया कि जिस प्रकार दीपक को माचिस की तीली से प्रज्वलित किया जाता है उसी भाँति आपमें सारे ईश्वरीय तत्व मौजूद थे सिर्फ उसमें माचिस की तीली लगनी थी । ईश्वर की बड़ी कृपा है कि आपको यह चीज पहली भेंट में ही प्राप्त हो गई । इस पत्र के पाते ही पूज्य चच्चाजी ने और अपने सारे साधन खत्म कर दिये तथा पूज्य लालाजी की शरण प्राप्त कर उनके आदेश के अनुसार कर्मयोग का साधन करने लगे । पूज्य चच्चाजी में सारे ईश्वरीय गुण सुख, संतोष, वैराग्य, विवेक, क्षमा, दया, परोपकार, धैर्य, इन्द्रिय निग्रह तथा कर्मयोग की साधना द्वारा प्राप्त पूर्ण आध्यात्मिकता विद्यमान थी । गृहस्थाश्रम में रहते हुए उनका नैत्यिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक जीवन अमर रहा ।

परम पूज्य चच्चाजी गृहस्थाश्रम में रहकर पूर्ण कर्मयोगी सत्गुरु थे। उनके द्वारा हजारों का कल्याण हुआ। उनका चरित्र इतना उज्ज्वल था कि कोई भी उन्हें किसी प्रकार की भेंट देने का साहस नहीं कर सकता था। उनके चार पुत्र व दो पुत्रियाँ थी। पुत्रियों का देहावसान उनके जीवनकाल में ही हो गया था। चारों पुत्र अच्छे पदों पर कार्य कर रहे हैं और चच्चाजी के रूप में ही उनके बताये हुए मार्ग पर चलकर लोगों का कल्याण कर रहे हैं।

यह कर्मयोग क्या है? इस लेख को पढ़ने के बाद पाठकों को व साधकों को इसकी जिज्ञासा होना स्वाभाविक ही है। पूज्य चच्चाजी ने बताया कि कर्म करते हुए योग की साधना द्वारा ब्रह्म को प्राप्त करना ही "कर्मयोग" है। इसको किसी कर्मयोगी सत्गुरु की शरण में जाकर ही प्राप्त करना चाहिए। पुस्तकों अथवा लेखों के पढ़ने से ही इस योग की साधना सफल नहीं हो सकती। जिस प्रकार विद्यालय के लिए मास्टर अथवा गुरू की आवश्यकता होती है उसी प्रकार आध्यात्मिक विद्या प्राप्त करने के लिए भी किसी सत्गुरु की आवश्यकता होती है। इस लेख में कर्मयोगियों के जो लक्षण बतलाए गए हैं वह बिरले मनुष्यों में ही पाये जा सकते हैं। गीता मे श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को बताया है कि हे अर्जुन, मैंने यह योग सूर्य को बताया था, पर इस बात को बहुत दिन हो गए। फिर उस सूर्य ने यह योग मनु को बताया था। मनु ने यह योग–स्थिति प्राप्त करके इक्ष्वाकु को इसका उपदेश दिया था – फिर अनेक राजर्षियों, जैसे जनक आदि को इसका ज्ञान हुआ। परन्तु इस समय इस योग को जानने वाला कोई बिरला ही दिखाई देता है। प्राणी वासनाओं के फेर में पड़ गए और देह बुद्धि के मोह में पड़ गए और इसीलिए वे लोग यह आत्म ज्ञान भूल गए। ऐसे कर्मयोगी सत्गुरु को पहचानना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। पूज्य चच्चाजी ने बतलाया कि कर्मयोगी पुरुष अपनेको इतना गुप्त रखता है कि उसको पहचानना बहुत कठिन होता है। जिस प्रकार भगवान रामको उस समयके कुछ ऋषि मुनि तथा योगियोंने ही पहचान पाया था अन्य व्यक्ति उनको महाराजा दशरथके पुत्रके रूप में ही देखते थे, उसी प्रकार कर्मयोगी पुरुष संसार की मर्यादा में रहते हुए अपनेको प्रकट नहीं होने देता। परम पूज्य चच्चाजीने कभी भी अपनेको संत या महात्मा की श्रेणी में नहीं माना बल्कि सेवा भावसे ही वह समान रूपसे प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूपसे सबके प्रति जो कर्तव्य उचित होता था, करते रहते थे। उनके इस गुप्त रूपको निकट से निकट के व्यक्ति भी नहीं पहचान सके। परन्तु जिन्होंने निर्मल व शुद्ध हृदय होकर उनको प्राप्त करने की कोशिश, की उनको उन्होंने भली भाँति अपना कर अपने आत्म स्वरूपके दर्शन कराये।

"सोई जानहि जेहि देहु जनाई, जानत तुम्हहिं तुम्हहि होई जाई"। पूज्य चच्चाजी ने बताया कि सत्गुरु का कार्य है कि वह अपने शिष्य को योग्य बनाकर अपने रूप में परिवर्तित कर देता है। ऐसे मनुष्य का पाना दुर्लभ होता है, फिर भी ऐसे पुरुष की मोटी पहचान इस प्रकार हो सकती है। अपनी पुस्तक "गृहचर्या में नर नारी सहयोग" में उन्होंने लिखा है :—

१- कहा गया है कि गुरू कीजिये जान के और पानी पीजिये छान के। साधारण तौर पर सत्गुरू की पहचान जिज्ञासु की आँख में आना असंभव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य है।

२- बाहरी तौर पर गुरू की पहचान के लिए यह हो सकता है कि जो व्यक्ति जहाँ पर पैदा हुआ है, जहाँ पर उसने विद्या पायी है, अपने जीवन में उसने जो पेशा किया है, उन सब अवस्थाओं में उसके सदाचार व ईमानदारी में लोगों ने उसकी किस हद तक आलोचना और प्रशंसा की है।

३- जिसमें स्वार्थ न हो, अहंकार न हो, जो प्रेमी हो, परोपकारी हो, सदाचारी हो और साथ ही ईश्वर भक्त भी हो। यदि ऐसा व्यक्ति संत कृपा से मिल जाये तो उसी को अपने आप को समर्पण कर देना चाहिए।

४- सद्गुरू कृपा यह है कि वह जिज्ञासु के हृदय के अंधकार को दूर करके जैसा वह स्वयं है वैसा उसको बना देता है।

५- जीवन के ध्येय को प्राप्त करने के लिए सद्गुरु की प्राप्ति अनिवार्य है।

कर्मयोग विधि—

जैसा कि ऊपर दिए गए तथ्यों से पाठकों व साधकों को इस बात की भली भाँति पुष्टि हो जाती है कि कर्मयोगी सद्गुरू संसार में साकार रूप में ईश्वर के स्वरूप में भटकते हुए प्राणियों का उद्धार करने के लिए ही जन्म लेते है। इस बात की पुष्टि भगवान कृष्ण ने गीता, में जैसा कि मैं इस लेख में उल्लेख कर चुका हूं, अर्जुन को उपदेश देते समय की है। परन्तु संसार के प्राणी माया मोह में फंसे होने के कारण अन्य अनेक साधनों, आडम्बरों, चमत्कारों, झूठी पूजा पाठ करने में अपना जीवन नष्ट कर देते है। पूज्य चच्चाजी ने कृपा चार प्रकार की बताई है: निज कृपा, ईश-कृपा, संत कृपा व सत्गुरू कृपा। निज कृपा यह है कि प्राणिमात्रको इस बात की प्रबल इच्छा हो कि वह ईश्वर को प्राप्त कर सके। इस प्रकार की जब प्रबल इच्छा मनुष्यमें उत्पन्न हो जाती है तो उस पर ईश-कृपा होती है। ईश कृपा यह है कि वह उस मनुष्य को किसी

संत के पास भेज देते है। संत-कृपा यह है कि वह उस मनुष्यको सत्संग कराकर इस योग्य बना देता है कि उसको सद्गुरू की प्राप्ति हो सके। सद्गुरू कृपा यह है कि वह जिज्ञासुके हृदय के अंधकार को दूर करके जैसा वह साकार ब्रह्मरूप में होता है वैसा ही उसको बना देती है। कहा है :

गुरुर्ब्रह्मा, गुरूर्विष्णु, गुरूर्देवो महेश्वरा।
गुरू साक्षात परब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नमः॥

ईश्वर निराकार है वह जीवों का उद्धार करने हेतु सगुण रूप धारण करके साकार रूपमें संसार में आता है। तुलसीदास जीने कहा है :

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा अकथ अनादि अगाध अनूपा॥

संसार में सगुण व साकार ब्रह्मरूप जैसा कि उक्त तथ्यों से दर्शाया गया है कर्मयोगी सद्गुरू का होता है। निगुर्ण ब्रह्मको हमने देखा नहीं है, अतः उसको पाने के लिए साकार रूप सद्गुरू की आराधना करने से लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है। कर्मयोग की साधना ऐसे चैतन्य रूप सद्गुरू की शरण में आकर ही करनी चाहिए। जैसे बिजलीका बल्ब जलाने के लिए उसमें करेन्ट पावर हाउस से आती है, वैसे ही साधक जब सद्गुरू की आराधना करता है, उनकी शक्ति से साधक की चैतन्य शक्ति भी जाग्रत होती है। जैसा कि लिखा गया है यह विद्या पुस्तकों या लेखो आदि के पढ़ने से प्राप्त नहीं हो सकती उल्टे उसके भयंकर परिणाम हो सकते है, इसलिए चैतन्य शक्ति सद्गुरू को प्राप्त करना अनिवार्य है। फिर भी इसकी साधना मोटे रूप में पूज्य चच्चाजी ने निम्न प्रकार बताई है तथा यही विधि गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को बताई है-

प्रत्येक साधकको अपने घर में ही एक ऐसा स्थान चुनना चाहिए जो स्वच्छ व हवादार हो तथा जहां परिवारके अन्य सदस्य, व बच्चों आदि का आवागमन न हो। ऐसे स्थान को योग साधना के लिए चुनना चाहिए। फिर वहां पर एक स्वच्छ आसन बिछाकर योगासन से बैठना चाहिए। इस आसन पर बैठकर बहुत ही दीन भाव से पृथ्वी को प्रणाम करना चाहिए। इसके पश्चात् चित्तको एकाग्र करना चाहिए और सद्गुरुका स्मरण करना चाहिए। फिर अन्दर और बाहर नेत्र बन्द करके सात्विक दृष्टि से ओत-प्रोत होकर बहुत सम्मान और आदरपूर्वक तब तक सद्गुरुका स्मरण करते रहना चाहिए जब तक अहंकारकी कठोरता बिल्कुल नष्ट न हो जाय, मनके संकल्प-विकल्प शून्य न हो जाये, इन्द्रियोंकी चंचलता बिल्कुल रुक न जाये और मन एकाग्र होकर हृदय में प्रतिबिम्बित न हों जाय। फिर इसी अवस्थामें आसन पर बैठे रहना चाहिए। ऐसी अवस्थामें यह अनुभव होने लगेगा कि हम स्वयं अपनेको भूल गए

हैं और एक प्रकारके भंडारमें पहुंच रहे हैं। इस अवस्थामें पहुंचते ही प्रवृति अन्तर्मुखी हो जाती है मन शून्य अवस्था में पहुंच जाता है तथा समाधिस्थ अवस्था प्राप्त हो जाती है। चित्तकी समाधि अर्थात् एकाग्र सम स्थिति समीप आ जाती है और योगाभ्यासका साधन आरम्भ हो जाता है। इसमें साधकको इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि योगाभ्यास करते समय पीठ पर रीढ़की हड्डी झुकने न पावे। इस प्रकार १५ मिनटसे आरम्भ करके इस अभ्यासको आधे व एक घंटे तक बढ़ाना चाहिए। इस बातका ध्यान रखना भी बहुत आवश्यक है कि योगाभ्यास प्रातः व संध्या निश्चित समय पर तथा निश्चित समय तक अवश्य किया जाय। इससे कुछ दिनमें शरीरमें स्थित छै चक्रो व कुंडलिनी आदि के जाग्रत होने की भी अवस्था स्वतः आ जाती है। रिद्धि सिद्धियां प्राप्त होने लगती हैं,नामका निरंतर जाप होने लगता है। लेकिन चक्रों व कुंडलिनियोंके जाग्रत होने आदि की ओर साधकका ध्यान नहीं आना चाहिए। इस योगसे इच्छा शक्ति इतनी प्रबल हो जाती है कि मनुष्य जो चाहे क्षण मात्रमें कर सकता है, अतः पूज्य चच्चाजीका कहना था कि योग द्वारा इस प्रकार अर्जित इच्छा-शक्तिको कभी भी चमत्कार दिखाने अथवा भौतिक कार्योंकी पूर्ति हेतु उपयोगमें नहीं लानी चाहिए। इससे आगे का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और साधक इन सब बातोंके चक्करमें पड़ कर अपने लक्ष्यको प्राप्त नहीं कर पाता है। पूज्य चच्चाजीने बतलाया कि यह मन बड़ा चंचल है लेकिन जहां जहां यह जावे यदि वहां से लौटा कर सद्गुरु द्वारा बताये गए केन्द्र पर लगाया जाये तो गुरु-कृपासे यह स्थिर हो जाता है। मन के स्थिर हो जानेसे संकल्प विकल्प खत्म हो जाते हैं और बुद्धि बहुत ही सुखपूर्वक धैर्यके मन्दिरमें निवास करने लगती है। बुद्धिको धैर्य प्राप्त हो जाने पर सद्गुरुके प्रति साधकका प्रेम व श्रद्धा निरन्तर बढ़ती जाती है। इससे मन भी अनुभवके मार्ग पर चलने लगता है और अपनी स्थिरताकी सहायतासे व गुरुकृपासे वह आप ही आप आत्मस्वरूपके पास आ पहुंचता है। फिर उस आत्मस्वरूपको देखकर वह उसके साथ मिल जाता है। उस समय द्वैत भाव खत्म होकर अद्वैतमें समाधि प्राप्त हो जायगी और इसके पश्चात् आत्म प्रकाशसे तीनों लोक प्रकाशमान हो जावेंगे। यही योगाभ्यास है और यही परम लक्ष्य है।

कर्मयोगकी साधनामें पूज्य चच्चाजीने बताया कि मनकी साधना ही श्रेष्ठ है। मनके द्वारा ही हम अधोगतिको प्राप्त होते हैं और उसीके द्वारा हम भगवानको प्राप्त करते हैं। साधक लोग अक्सर पूज्य चच्चाजी से कहा करते थे कि चच्चा पूजामें मन नहीं लगता है। इसका उत्तर पूज्य चच्चाजी देते थे कि जिस प्रकार एक होगो—

पैथिक डाक्टर दवाई देकर सारी बीमारीको पहले पूर्ण रूपसे उभार देते हैं फिर उस बीमारीको ठीक करते हैं तथा जिस भाँति सूर्यके उदय होने पर सब अच्छी व बुरी चीजें दिखाई देने लगती हैं उसी प्रकार साधक जब योगकी साधना आरम्भ करता है तो उसके मनके सारे गुण व अवगुण उभड़ने लगते हैं। इसके पश्चात् आत्म प्रकाशसे सारे अवगुण भस्म होकर मन निर्मल जलकी भाँति स्वच्छ हो जाता है। इससे साधकोंको घबड़ाकर अपनी साधना नहीं छोड़नी चाहिए। यदि मन स्थिर न हो तो उसे अनियंत्रित छोड़ देना चाहिए। फिर इस प्रकार से अनियन्त्रित छोड़ा हुआ मन जहाँ जहाँ जाये वहाँ से उसे नियंत्रित करके लौटा लाना चाहिये। बस इसी से उसे स्थिर रहने की आदत पड़ जायेगी। मनकी यह एक अच्छी आदत है कि इसे जिस बातका मजा मिल जाता है फिर उसीका इसे चस्का लग जाता है। इसलिए इसे घुमा फिरा कर अनुभव व कौतुकके द्वारा आत्म सुख का चस्का लगाना चाहिए।

मनके पवित्र होने पर पूज्य चच्चाजीने बताया कि इसका स्वरूप शुद्ध प्रेममें बदल जाता है। जिस प्रकार एक पिता-भक्त पुत्र पितासे प्रेम करता है, एक सती नारी अपने प्रियतम से प्यार करती है उसी भांति साधक के हृदय का अंधकार दूर होते ही उसका प्रेम अपने इष्टदेव के चरणों में निरंतर बढ़ता जाता है। साकार रूप की पूजा प्रेम व श्रद्धा से ही फलीभूत होती है। गुरु के चरणों में प्रेम करने से आत्म प्रकाश जाग्रत होता हैं तथा उस समय ज्ञान स्वयं ही आकर साधक का आलिंगन करने लगता है। पूज्य चच्चाजी ने बताया कि "कर्मयोग" का मार्ग ज्ञान तथा भक्ति का मिश्रित मार्ग है जो दोनों ही मिलकर साधक को आत्म स्वरूप के दर्शन करा कर उसमें ही लीन कर देते हैं। इस कर्मयोग के मार्ग में जो ईश्वर प्राप्तिके ध्येय को ही लेकर चलते हैं, उन्हें ही सफलता मिलती है। इस पर दृढ़ विश्वास व श्रद्धा से चलने पर भौतिक सफलताएं स्वतः होती रहती हैं और साधक का उस ओर ध्यान भी नहीं जाता।

हे परमपिता सद्गुरु देव चच्चाजी आपकी महिमा अपरम्पार है। आप साकार ब्रह्मरूप से इस संसार में स्थूल शरीर धारण किये रहे। हम लोग अपनी अज्ञानता के कारण आपको संसारी दृष्टि से ही देखते रहे। पुत्रों ने आपको पिता के रूप में देखा, रिश्तेदार सम्बन्धियों ने आपको रिश्तेदार सम्बन्धी के रूप में देखा, अन्य संसारी मनुष्यों ने आपको संसारी गृहस्थ के रूप में देखा, शिष्यों ने संसारी गुरु के रूप में देखा, भक्तों ने भगवान के रूप में देखा, तथा जिन्होंने निर्मल मन होकर, छल-कपट छोड़कर आपके

आत्म स्वरूप के दर्शन करना चाहे, उनको आपने अपना स्वरूप देकर द्वैत-भाव खत्म कर अद्वैत में परिणित कर दिया। आप दया व क्षमा के भंडार रहे। हम लोगों के पापों व कुकर्मों को कभी आपने देखा ही नहीं बल्कि उल्टे क्षमादान प्रदान करते हुए अपनी कृपा की वर्षा करते रहे। आपके इतने उपकार हम सबके साथ है कि उनसे हम जन्म-जन्मान्तरों में भी उऋण नहीं हो सकते। हे चच्चाजी आपकी सामर्थ्य अनन्त है आपका स्वरूप अमर्याद है। आपको हम सब नमस्कार करते हैं और आपके चरण रज की वन्दना करते है। आप आत्म साक्षात्कार के सर्वाधिकारी हैं और समस्त संसार को मन्थन करने वाला जो काम विकार है, उस काम विकार का मन्थन करने वाले आप ही है। आपके आत्म प्रकाश से तीनों लोक प्रकाशित हो रहे। आप ही दृष्टि व आप ही द्रष्टा है:

"जग पेखन तुम देखन हारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥
तेउ न जानहि मरम तुम्हारा। और तुम्हहि को जाननिहारा॥
सोइ जानहि जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई॥
ध्यान मूलं गुरुमूर्ति, पूजा मूलं गुरुपंदम।
मंत्र मूलं गुरुर्वाक्यम, मोक्ष मूलम् गुरुर्कृपा॥

हे प्रकाश के पुंज सद्गुरुदेव चच्चा जी आप साकार रूप से स्थूल शरीर में मर्यादा पुरुषोत्तम की भाँति लीला करते करते रहे। अब आप ब्रह्मलीन होकर ब्रह्मरूप में सारे संसार में प्रकाशित हो रहे हैं और यह सारा संसारा आपमें ही बसा हुआ है। आप मौन स्वरूप है। अतः हम सब मौन होकर ही आपके चरण-रज की वन्दना करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि हे परम पिता परमात्मा सद्गुरु देव हम सब लोगों के हृदय के अंधकार को अपने दिव्य आत्म प्रकाश से दूर करते हुए हमें सद्बुद्धि दे ताकि हम आपकी बताई हुई कर्मयोग साधना पर आरूढ़ होकर अपने द्वैत भाव को खत्म कर आपके अद्वैत स्वरूप को प्राप्त कर सकें तथा उस स्वरूप में ही स्थित रह कर सभी प्राणियों की निःस्वार्थ भाव से सेवा करते हुए आप में ही लीन हो जावें।

•——•